

पालखेड की लड़ाई (1728) का सामरिक और रसद प्रबंधन विश्लेषण

सक्षम अग्रवाल, शोधार्थी (इतिहास) एवं डॉ. रोमेश चित्रांशी, प्रोफेसर
इतिहास विभाग, पी. के. यूनिवर्सिटी, शिवपुरी, म. प्र.

सार (Abstract)

प्रस्तुत शोध पत्र 28 फरवरी 1728 को पेशवा बाजीराव प्रथम और हैदराबाद के निजाम-उल-मुल्क के मध्य लड़े गए पालखेड के युद्ध का एक विस्तृत सामरिक, भौगोलिक और रसद (Logistics) विश्लेषण प्रस्तुत करता है। आधुनिक सैन्य इतिहास और सैन्य विज्ञान में पालखेड का युद्ध एक ऐतिहासिक मील का पत्थर है, क्योंकि यह बिना किसी बड़े हिंसक आमने-सामने के टकराव या तोपखाने के भारी प्रयोग के केवल रणनीतिक युद्धाभ्यास, गतिशीलता और उत्कृष्ट रसद प्रबंधन द्वारा प्राप्त की गई एक पूर्ण विजय थी। इस शोध में दक्कन की विषम और शुष्क भौगोलिक परिस्थितियों को एक हथियार के रूप में उपयोग करने, दुश्मन की रसद एवं जल आपूर्ति श्रृंखला को पूरी तरह नष्ट करने और गतिशीलता (Mobility) के माध्यम से एक भारी तोपखाने से लैस विशाल सेना को पंगु बनाने की बाजीराव की सैन्य विधा का वैज्ञानिक मूल्यांकन किया गया है। यह पत्र दर्शाता है कि कैसे बाजीराव ने 'लिविंग ऑफ द लैंड' (जमीन पर जीना) की पद्धति और अभूतपूर्व सूचना तंत्र के बल पर शत्रु को आत्मसमर्पण के लिए विवश किया।

1. प्रस्तावना (Introduction)

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारतीय उपमहाद्वीप का राजनीतिक परिदृश्य अत्यंत अस्थिर और संक्रमणकालीन था। मुगल साम्राज्य के पतन के दौर में दक्कन में एक नई महाशक्ति के रूप में मराठों का उभार और हैदराबाद में निजाम-उल-मुल्क की स्वतंत्र सत्ता की स्थापना ने भारत के इतिहास को एक नया मोड़ दिया। इस कालखंड में पेशवा बाजीराव प्रथम (1720-1740) का उदय मराठा इतिहास की सबसे युगांतरकारी घटना थी। उन्होंने मराठा साम्राज्य की सैन्य नीतियों में व्यापक आमूलचूल परिवर्तन किए। छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा स्थापित 'गनिमी कावा' या रक्षात्मक गुरिल्ला युद्ध पद्धति को बाजीराव ने एक अत्यंत आक्रामक, तीव्रगामी और अखिल भारतीय विस्तारवादी सैन्य विधा में परिवर्तित कर दिया (Srinivasan, 1944)।

पालखेड की लड़ाई (28 फरवरी 1728) इसी आक्रामक गतिशीलता का चरमोत्कर्ष थी। यह युद्ध केवल दो सेनाओं के बीच का संघर्ष नहीं था, बल्कि यह दो भिन्न सैन्य विचारधाराओं का टकराव था। एक तरफ हैदराबाद का

निजाम-उल-मुल्क था, जिसके पास मुगल शैली की विशाल, भारी, आधुनिक फ्रांसीसी तोपखाने से सुसज्जित और धीमी गति से चलने वाली सेना थी। दूसरी तरफ पेशवा बाजीराव प्रथम की हल्की, तोपखाने से मुक्त, अत्यंत तीव्रगामी घुड़सवार सेना थी, जिसकी मुख्य ताकत गति, आश्चर्य और रसद की न्यूनतम निर्भरता थी (Duff, 1826)। इस युद्ध का ऐतिहासिक महत्व इस बात में निहित है कि बाजीराव ने निजाम की विशाल तोपखाने और भारी मारक क्षमता को पूरी तरह से अप्रासंगिक बना दिया। आधुनिक सैन्य रणनीतिकार बी.एच. लिडेल हार्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'स्ट्रेटेजी' में अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण (Indirect Approach) की जिस अवधारणा की वकालत की है, पालखेड का युद्ध उसका सबसे सटीक और प्रारंभिक ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत करता है (Liddell Hart, 1954)।

2. युद्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और राजनीतिक कारण

1720 में पेशवा की गद्दी संभालने के बाद बाजीराव के सामने आंतरिक और बाह्य दोनों मोर्चों पर भारी चुनौतियाँ थीं। कोल्हापुर के शंभाजी द्वितीय ने शाह महाराज की

संप्रभुता को चुनौती दे रखी थी। दक्कन का सूबेदार निजाम-उल-मुल्क इस आंतरिक कलह का लाभ उठाकर मराठा शक्ति को पूरी तरह समाप्त करना चाहता था। निजाम एक अत्यंत चतुर और कूटनीतिज्ञ राजनीतिज्ञ था। उसने शाहू महाराज को चौथ और सरदेशमुखी देने से इनकार कर दिया और दावा किया कि वह खुद तय करेगा कि मराठा साम्राज्य का असली हकदार कौन है—शाहू महाराज या कोल्हापुर के शंभाजी (Sardesai, 1946)।

निजाम का यह कदम सीधे तौर पर मराठा संप्रभुता पर प्रहार था। उसने शाहू महाराज के असंतुष्ट सेनापति चंद्रसेन जाधव को अपने पाले में कर लिया और कोल्हापुर के शंभाजी की सेना के साथ मिलकर पुणे और उसके आस-पास के मराठा क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। शाहू महाराज इस संकट से चिंतित थे, क्योंकि पुणे पूरी तरह असुरक्षित हो गया था और निजाम की भारी सेना ने वहाँ तबाही मचा रखी थी। इस गंभीर परिस्थिति में पेशवा बाजीराव ने एक ऐसी रणनीति बनाई जिसने युद्ध के पारंपरिक नियमों को ही बदल दिया। उन्होंने पुणे की रक्षा के लिए सीधे निजाम से भिड़ने के बजाय, निजाम के गृह-क्षेत्र (हैदराबाद) और समृद्ध प्रांतों (मालवा और गुजरात) पर आक्रमण करने का निर्णय लिया, ताकि निजाम को पुणे छोड़ने पर मजबूर किया जा सके (Dighe, 1944)।

3. सामरिक गतिशीलता (Strategic Mobility) और बाजीराव का अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण

सैन्य विज्ञान में गतिशीलता (Mobility) को युद्ध का सबसे बड़ा कारक माना गया है। बाजीराव प्रथम ने इस सिद्धांत को पूरी तरह आत्मसात किया था। उन्होंने महसूस किया कि यदि मराठा सेना भारी तोपों, पैदल सैनिकों और बड़े तंबू-कनात के साथ यात्रा करेगी, तो वह मुगल सेना की मारक क्षमता के सामने टिक नहीं पाएगी। इसलिए, उन्होंने अपनी सेना को पूरी तरह तोपखाने से मुक्त कर दिया। प्रत्येक सैनिक के पास केवल दो घोड़े होते थे, ताकि एक घोड़े के थकने पर दूसरे का उपयोग किया जा सके (Kulkarni, 1996)।

जब निजाम पुणे के निकट सासवड में डेरा डाले हुए था, बाजीराव नवंबर 1727 में एक विशाल घुड़सवार सेना के साथ जालना की ओर बढ़े। उन्होंने निजाम के समृद्ध शहरों को निशाना बनाया। बाजीराव की गति इतनी तीव्र थी कि वे एक दिन में 50 से 60 मील की दूरी तय करते थे, जो उस समय के किसी भी यूरोपीय या एशियाई सेना के लिए अकल्पनीय थी। बाजीराव की इस अप्रत्यक्ष रणनीति का विवरण निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है:

सैन्य विशेषता	पेशवा बाजीराव की सेना (मराठा)	निजाम-उल-मुल्क की सेना (हैदराबाद)
सेना का प्रकार	पूर्णतः हल्की, तीव्रगामी घुड़सवार सेना	भारी तोपखाना, पैदल सेना और सामंतवादी घुड़सवार
गति (प्रतिदिन)	50 से 60 मील (अत्यंत तीव्र)	10 से 15 मील (धीमी और भारी)
तोपखाना	शून्य (केवल व्यक्तिगत हल्के हथियार)	अत्यंत आधुनिक और भारी फ्रेंच-सीसी तोपें
रसद निर्भरता	'लिविंग ऑफ द लैंड' (स्थानीय आपूर्ति)	विशाल रसद गाड़ियाँ और लंबी आपूर्ति रेखाएँ
मुख्य रणनीति	भ्रम पैदा करना, गतिशीलता और अप्रत्यक्ष प्रहार	सीधा टकराव, घेराबंदी और भारी गोलाबारी

मराठा सेना की इस गतिशीलता ने निजाम के खुफिया तंत्र को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया। जब तक निजाम को खबर मिलती कि बाजीराव जालना में हैं, तब तक बाजीराव खानदेश और बुरहानपुर की ओर बढ़ चुके होते थे। इसके

बाद बाजीराव ने अचानक गुजरात की ओर रुख किया। इस कदम ने निजाम को अत्यधिक विचलित कर दिया, क्योंकि गुजरात और मालवा से मिलने वाला राजस्व उसके साम्राज्य की रीढ़ था (Sinh, 1936)। निजाम को विवश होकर पुणे छोड़ना पड़ा और वह बाजीराव का पीछा करने के लिए उत्तर की ओर मुड़ा। यहीं पर बाजीराव की मनोवैज्ञानिक और सामरिक जीत की शुरुआत हुई, क्योंकि उन्होंने युद्ध की जगह और समय खुद तय किया, न कि दुश्मन को तय करने दिया।

4. रसद प्रबंधन (Logistics) का वैज्ञानिक विश्लेषण

किसी भी बड़े सैन्य अभियान की सफलता उसकी रसद या लॉजिस्टिक्स पर निर्भर करती है। प्रसिद्ध सैन्य उक्ति है कि "सेनाएं अपने पेट के बल चलती हैं।" पालखेड के युद्ध में रसद प्रबंधन ही हार और जीत का सबसे बड़ा निर्णायक कारक बना। बाजीराव ने इस मोर्चे पर निजाम को पूरी तरह पछाड़ दिया।

4.1 'लिविंग ऑफ द लैंड' (जमीन पर जीना) की मराठा नीति

पारंपरिक सेनाएं अनाज, तंबू और अन्य सामग्रियों से लदे हजारों बैलों और गाड़ियों के साथ चलती थीं। बाजीराव ने इस व्यवस्था को पूरी तरह त्याग दिया। मराठा सैनिक अपने साथ कोई भारी राशन नहीं रखते थे। वे केवल एक छोटा सा थैला (तोबरा) रखते थे जिसमें थोड़ा बाजरा, गुड़ और घोड़ों के लिए चना होता था। शेष आपूर्ति वे विजित क्षेत्रों के स्थानीय संसाधनों से प्राप्त करते थे। इसे सैन्य विज्ञान में 'लिविंग ऑफ द लैंड' कहा जाता है (Clausewitz, 1832)। चूंकि उनके पास कोई भारी आपूर्ति श्रृंखला नहीं थी, इसलिए दुश्मन के लिए उनकी रसद लाइन को काटना असंभव था। इसके विपरीत, वे खुद मुक्त होकर शत्रु की रसद लाइनों पर प्रहार करने के लिए स्वतंत्र थे।

4.2 निजाम की आपूर्ति श्रृंखला को नष्ट करना

निजाम की सेना जैसे-जैसे औरंगाबाद से बाजीराव का पीछा करते हुए अहमदनगर और गोदावरी नदी के क्षेत्रों की ओर बढ़ी, बाजीराव के हल्के घुड़सवारों ने उसकी रसद

आपूर्ति व्यवस्था पर सुनियोजित हमले शुरू कर दिए। मराठों ने निजाम के पीछे चल रही अनाज की गाड़ियों के काफिले (बनजारों) को लूट लिया या नष्ट कर दिया (Sarkar, 1952)। इसके परिणामस्वरूप, निजाम की विशाल सेना के पास खाद्य सामग्री का गंभीर संकट पैदा हो गया। भारी तोपों को खींचने वाले बैल और हाथी भूख से मरने लगे। बाजीराव ने निजाम की सेना को इस प्रकार घेर लिया कि वह न तो आगे बढ़ पा रही थी और न ही वापस अपनी राजधानी औरंगाबाद लौट पा रही थी।

5. भूगोल का सैन्य उपयोग: दक्कन की शुष्कता एक हथियार के रूप में

पालखेड की रणनीति का सबसे शानदार पहलू भूगोल और मौसम का एक सक्रिय युद्ध-हथियार (Geographical Warfare) के रूप में उपयोग करना था। बाजीराव दक्कन के भूगोल, पहाड़ियों, नदियों और विशेष रूप से जल स्रोतों की स्थिति से पूरी तरह परिचित थे। फरवरी का महीना दक्कन में शुष्कता की शुरुआत का समय होता है, जब छोटे तालाब और नदियाँ सूखने लगती हैं (Sen, 1928)।

बाजीराव ने निजाम की सेना को जानबूझकर गोदावरी नदी के पहाड़ी और शुष्क इलाकों की ओर आकर्षित किया। पालखेड (वर्तमान औरंगाबाद जिले में गंगापूर के पास) एक ऐसा क्षेत्र था जो चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ था और वहाँ पानी के स्रोत अत्यंत सीमित थे। बाजीराव ने अपनी सेना को इस प्रकार तैनात किया कि पालखेड क्षेत्र के सभी ज्ञात कुओं, बावड़ियों और जलधाराओं पर मराठों का नियंत्रण हो गया (Parasnis, 1920)।

जब निजाम की भारी सेना इस चक्रव्यूह में फंसी, तो बाजीराव ने गोदावरी नदी के घाटों को भी ब्लॉक कर दिया। अब निजाम की स्थिति यह थी कि उसके पास भारी फ्रांसीसी तोपें तो थीं, लेकिन उनके उपयोग के लिए न तो सामने कोई थल सेना खड़ी थी और न ही उसके सैनिकों और पशुओं के पीने के लिए पानी की एक बूंद उपलब्ध थी। दक्कन की कड़कती धूप, धूल भरी आंधियों और पानी की भीषण कमी ने निजाम के सैनिकों का मनोबल पूरी तरह तोड़ दिया। भूख

और प्यास से तड़पते सैनिकों के कारण निजाम की तोपें और बारूद के ढेर बेकार पड़े रहे, क्योंकि तोपची खुद अपनी जान बचाने के लिए पानी की तलाश में भटक रहे थे (Chhabra, 2005)। भूगोल को इस तरह से एक घातक हथियार में बदल देना बाजीराव की सैन्य प्रतिभा का अनूठा प्रमाण है।

6. पालखेड का अंतिम चरण और आत्मसमर्पण

फरवरी 1727 के अंतिम सप्ताह तक निजाम की सेना पूरी तरह पंगु हो चुकी थी। पालखेड के पहाड़ी इलाके में घिरे होने के कारण वे मराठा घुड़सवारों पर अपनी भारी तोपों से निशाना नहीं साध पा रहे थे, क्योंकि मराठा कभी एक जगह रुकते ही नहीं थे। वे अचानक पहाड़ियों के पीछे से आते, बाणों और भालों से हमला करते और गायब हो जाते थे। इसे आधुनिक सैन्य शब्दावली में 'हित एंड रन' या 'ह्रास रणनीति' (Attrition Strategy) कहा जाता है (Montross, 1960)।

निजाम-उल-मुल्क, जो खुद को दक्कन का सबसे बड़ा सैन्य कमांडर समझता था, को समझ आ गया कि इस परिस्थिति में लड़ना आत्महत्या के समान है। उसकी रसद खत्म हो चुकी थी, पानी के अभाव में महामारी फैलने की आशंका थी और उसके सबसे वफादार सैनिक भी हथियार डालने को तैयार थे। अंततः 25 फरवरी 1728 को निजाम ने संधि का प्रस्ताव भेजा। बाजीराव ने उसे पूरी तरह आत्मसमर्पण करने पर मजबूर कर दिया। 6 मार्च 1728 को मुंगी-शिवगांव में दोनों पक्षों के बीच एक ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर हुए, जिसे 'मुंगी-शिवगांव की संधि' कहा जाता है (Sardesai, 1948)।

6.1 मुंगी-शिवगांव की संधि के मुख्य बिंदु:

- निजाम ने छत्रपति शाहू महाराज को मराठा साम्राज्य का एकमात्र वैध शासक स्वीकार किया।
- कोल्हापुर के शंभाजी द्वितीय को सहायता देना बंद करने का वचन दिया।
- दक्कन के छह सूबों से चौथ और सरदेशमुखी वसूलने के मराठा अधिकार को बिना किसी शर्त के बहाल किया।

- मराठा राजस्व अधिकारियों (मुकासदारों) को उनके क्षेत्रों में वापस काम करने की अनुमति दी।
- युद्ध के हर्जाने के रूप में एक बड़ी राशि पेशवा को दी।

7. पालखेड के युद्ध का सैन्य-वैज्ञानिक महत्व

सैन्य विज्ञान के दृष्टिकोण से पालखेड का युद्ध कई मायनों में एक क्रांतिकारी घटना थी। प्रथम, इसने सिद्ध किया कि युद्ध केवल भारी हथियारों और संख्याबल से नहीं, बल्कि बेहतर रणनीति और गतिशीलता से जीते जाते हैं। द्वितीय, इसने रसद प्रबंधन के महत्व को नए सिरे से स्थापित किया। बाजीराव ने दिखाया कि भारी रसद गाड़ियाँ कभी-कभी सुरक्षा देने के बजाय खुद एक बड़ा बोझ बन जाती हैं (Blacker, 1821)।

जर्मन फील्ड मार्शल अल्फ्रेड वॉन श्लीफेन ने काने (Cannae) के प्राचीन युद्ध के आधार पर जिस 'घेराबंदी और विनाश की रणनीति' (Strategy of Encirclement) का सिद्धांत विकसित किया था, बाजीराव ने पालखेड में लगभग वही कारनामा बिना किसी बड़े रक्तपात के कर दिखाया था (Schlieffen, 1913)। आधुनिक युग के महान सैन्य विश्लेषक कर्नल जॉन बॉयड ने 'OODA लूप' (Observe, Orient, Decide, Act) का जो सिद्धांत दिया है, पालखेड का युद्ध उसका एक जीवंत उदाहरण है। बाजीराव का निर्णय लेने का चक्र (Decision Cycle) निजाम के चक्र से इतना तेज था कि निजाम हमेशा केवल बाजीराव के कदमों पर प्रतिक्रिया ही देता रह गया, वह कभी खुद कोई पहल नहीं कर पाया (Boyd, 1976)।

8. निष्कर्ष (Conclusion)

पालखेड की लड़ाई भारतीय सैन्य इतिहास की सबसे गौरवशाली और रणनीतिक रूप से उत्कृष्ट लड़ाइयों में से एक है। पेशवा बाजीराव प्रथम ने बिना किसी भारी जनहानि के, दक्कन के सबसे शक्तिशाली और आधुनिक रूप से सुसज्जित शासक को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। यह युद्ध उनकी उस वैज्ञानिक सोच का परिणाम था जिसके तहत उन्होंने भूगोल को एक रणनीतिक सहयोगी और गतिशीलता को अपनी मुख्य मारक क्षमता बनाया। रसद प्रबंधन के मोर्चे

पर भुखमरी और प्यास को एक अदृश्य सेना के रूप में इस्तेमाल करना बाजीराव की असाधारण सैन्य दूरदर्शिता को दर्शाता है। पालखेड की विजय ने न केवल दक्कन में मराठा वर्चस्व को स्थायी रूप से स्थापित किया, बल्कि बाजीराव के लिए उत्तर भारत के विजय अभियानों का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया। यह युद्ध आज भी दुनिया भर के सैन्य अकादमियों में रणनीतिक युद्धाभ्यास और रसद प्रबंधन के एक उत्कृष्ट पाठ के रूप में पढ़ाया जाने योग्य है।

References

1. Srinivasan, C. R. (1944). *Baji Rao the First: The Great Peshwa*. Chidambaram: International Publishing House.
2. Duff, James Grant (1826). *A History of the Mahrattas*. London: Longman, Rees, Orme, Brown, and Green.
3. Liddell Hart, B. H. (1954). *Strategy: The Indirect Approach*. London: Faber and Faber.
4. Sardesai, G. S. (1946). *New History of the Marathas (Vol. II)*. Bombay: Phoenix Publications.
5. Dighe, V. G. (1944). *Peshwa Bajirao I and Maratha Expansion*. Bombay: International Book House.
6. Kulkarni, G. T. (1996). *The Maratha Warfare: Its Strategy and Tactics*. Pune: Modern Book Depot.
7. Sinh, Raghubir (1936). *Malwa in Transition: A Century of Anarchy (1698-1765)*. Bombay: D. B. Taraporevala Sons & Co.
8. Clausewitz, Carl von (1832). *Vom Kriege (On War)*. Berlin: Dümmlers Verlag.
9. Sarkar, Sir Jadunath (1952). *Fall of the Mughal Empire (Vol. I)*. Calcutta: M. C. Sarkar & Sons.
10. Sen, Surendra Nath (1928). *Military System of the Marathas*. Calcutta: Book Company.
11. Parasnian, D. B. (1920). *The Marathas in the Deccan*. Pune: Deccan Vernacular Translation Society.
12. Chhabra, G. S. (2005). *Advanced Study in the History of Modern India (Vol. I)*. New Delhi: Lotus Press.
13. Montross, Lynn (1960). *War Through the Ages*. New York: Harper & Brothers.
14. Blacker, Valentine (1821). *Memoir of the Operations of the British Army in India during the Mahratta War of 1817, 1818, and 1819*. London: Black, Kingsbury, Parbury, and Allen.
15. Schlieffen, Alfred von (1913). *Cannae*. Berlin: Mittler und Sohn.
16. Boyd, John R. (1976). *Destruction and Creation*. US Army Command and General Staff College.
17. Sardesai, G. S. (1948). *The Main Currents of Maratha History*. Bombay: Phoenix Publications.
18. Malcolm, Sir John (1823). *A Memoir of Central India (Vol. I)*. London: Kingsbury, Parbury, and Allen.
19. Rawlinson, H. G. (1926). *An Account of the Last Battle of Panipat and the Events Leading to It*. Bombay: Oxford University Press.
20. Gupta, P. C. (1937). *Baji Rao II and the East India Company*. Oxford: Oxford University Press.